एक अमीर कैंपस

अब समय आ गया है कि हम अपने कॉलेज कैंपस में जाति, वर्ग, धर्म और अन्य विशेषाधिकारों के आधार पर होने वाले पक्षपात पर आवाज बुलंद करें। लेकिन, एक ऐसा वर्ग भी होगा जो इस सच्चाई पर यकीन नहीं करेगा, हालाँकि, सही से देखने पर यह पता चलता है कि यहाँ पर उन लोगों के बीच एक गहरा ताल्लुक है जो इस भेदभाव को मानने से इनकार करते हैं और जिन्होंने कभी इसका सामना नहीं किया, क्योंकि हमारे कॉलेज में उस पृष्ठभूमि से लोग आते हैं जिसके साथ संस्थागत रूप से भेदभाव नहीं किया जाता है। एक संभ्रांत पृष्ठभूमि से आये हुए छात्र के लिए इसके अस्तित्व को पहचान पाने में कठिनाई हो सकती है लेकिन कई लोगों के लिए यह रोज की हकीकत बन गई है, और इसलिए, यह बहुत बड़ी नाइंसाफी होगी अगर इस पक्षपात पूर्ण व्यवहार को बिना जाँचे और इसपर बिना प्रश्न उठाए छोड़ दिया जाता है। और, इसी भावना के साथ हम यह लेख लिख रहे हैं।

पक्षपात को समझने के लिए इसके तरीके एवं प्रकृति को समझना जरूरी है। यह सच है और सुकून की बात है कि हमारे कैंपस में अस्पृश्यता (छुआछूत) और जाति-आधारित हिंसा एक आम बात नहीं है। लेकिन, तब भी हम कहना चाहेंगे कि अस्पृश्यता पूरी तरह से समाप्त नहीं हुई है। उच्च-जाति के शाकाहारी छात्रों के द्वारा अलग कमरों और अलग बर्तनों का नियम अब भी पालन किया जाता है। वे अपने कमरों को मांसाहारियों के द्वारा "प्रदूषित" नहीं होने देना चाहते हैं। हालाँकि, अदृश्य और अप्रत्यक्ष पूर्वाग्रहों के प्रकार बड़ी संख्या में हैं। इन भेदभावों का रूप अस्पष्ट होता है, लेकिन इनमें अपमान का तत्व कहीं से भी कम नहीं होता है। इन पक्षपातों के मौन चरित्र भरसक प्रयास करते हैं कि इनको, सत्यापित किए जाने वाले प्रमाण के रूप में या ठोस प्रकार से न दिखाया जा सके, लेकिन थोड़ी जाँच-पड़ताल, थोड़ा अवलोकन, और थोड़ा अनुभव करके लोग इसका पता लगा सकते हैं।

अपने शब्द-ज्ञान के द्वारा;

हम एक ऐसे शब्द-भण्डार के साथ बड़े होते हैं जो असहिष्णुता और कट्टरता से सजा होता है, जिसे हम अपने कैंपस में भी ले आते हैं। यदि, सबसे दबे-कुचले का वर्णन "चमार" शब्द के द्वारा किया जाता है, या एक अफ्रीकी छात्र के शारीरिक लक्षणों को भयावह करार दे दिया जाता है, किसी शांत-सौम्य स्वभाव युक्त बालक को अपमानजनक रूप से "छक्का" कहकर संबोधित किया जाता है, या उत्तर-पूर्वी छात्रों को "चिंकी" की संज्ञा दी जाती है, और कोई कम आकर्षक लगने वाला व्यक्ति "देहाती" का पर्याय बन जाता है, तब यहाँ पर वाकई में एक बहुत बड़ी दिक्कत है। हालाँकि, यह पूरी तरह से एक नियम बन चुका है कि इसपर सवाल भी नहीं उठाया जाता है। इन्हें हँसी-ठिठोली समझा जाता है, और इन्हें न ही जातीय या नस्लीय टिप्पणी माना जाता है जैसा कि होना चाहिए। हम अपने पूर्वाग्रहों को इतने बखूबी ढंग से आत्मसात कर चुके हैं कि हम यह भी नहीं पहचान पाते कि ये पूर्ण पक्षपात हैं।

साख पर प्रश्न उठाकर

SRCC का छात्र आमतौर पर तेज और होशियार समझा जाता है जब तक कि यह सत्यापित न हो जाए। लेकिन, एक दलित या OBC छात्र के लिए चीजें उलटी हैं। क्योंकि, शिक्षक और छात्र उन्हें कम हुनरमंद समझते हैं, जो अयोग्य हैं और आरक्षण की मेहरबानी से कॉलेज में आ गए हैं। कई लोग तो यहाँ तक अनुमान लगा लेते हैं कि आरक्षित श्रेणी के छात्र पूरी तरह से सुस्त होते हैं क्योंकि उनके लिए सब कुछ सरकार के द्वारा चांदी की थाल में सजाकर परोसा जाता है।

और, इसी प्रकार का अनुमान सभी अन्य शिक्षा-बोर्ड के छात्रों के बारे में भी लगाया जाता है (विशेष रूप से तमिल बोर्ड)। उन पर "काबिल" छात्रों की सीटें हड़पने का आरोप लगाया जाता है, क्योंकि, ऐसा समझा जाता है कि जो अंक उन्होंने प्राप्त किए हैं वे बढ़ा-चढ़ाकर दिए गए हैं और इसलिए गलत हैं।

उत्तर-भारतीयों, उच्च जाति एवं वर्गों के प्रति सहानुभूति न केवल तीखी टिप्पणियों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है बल्कि इसे कैंटीन, को-ऑप और अन्य सार्वजनिक जगहों पर भी लगातार सुना जा सकता है कि दलित/OBC/तमिल लायक नहीं हैं। यह किसी भी आम कक्षा के लैक्चर में स्पष्ट हो जाता है। एक अमीर, निजी विद्यालय के छात्र के लिए कक्षा में बिना परवाह किए गलती करने की छूट होती है। लेकिन, अगर एक दलित छात्र से गलती हो जाती है तो इसके लिए तुरंत ही आरक्षण के दुष्प्रभावों को दोषी ठहराया जाता है, और यदि एक दक्षिण भारतीय छात्र के मुँह से कुछ गलत निकल जाता है तो इसका ठीकरा त्रुटिपूर्ण स्कूली-शिक्षा पर फोड़ा जाता है।

इस प्रकार का रवैया अंत में गरीब और अल्पसंख्यक छात्रों को भारी बोझ के तले दबा देता है। इसकी गहन जाँच-पड़ताल की जाती है जिससे वह असुरक्षित महसूस करने लगती है और किसी भी चर्चा में शामिल होने से पहले वह दो बार सोचने पर मजबूर हो जाती है, जो प्रभावी ढंग से एक स्वतंत्र शैक्षिक वातावरण की रचना को रोकता है। खुद को बिना किसी डर के व्यक्त करने की स्वतंत्रता, जिससे विद्यार्थियों को कक्षा में आगे बढ़ने का अवसर मिलता है, उसे अमीर छात्र तो एक तरफ महत्व नहीं देते हैं और दूसरी तरफ गरीब विद्यार्थियों को उससे वंचित रखा जाता है।

लगातार पहचान याद दिलाने के द्वारा

केवल उच्च-जाति के छात्र हमारे जैसे कैंपस में अपनी जाति की पहचान को भूलने की हिम्मत कर सकते हैं। दलित और अल्पसंख्यकों को नित्य ही उनकी पहचान याद दिलाई जाती है। ऐसा सिर्फ तब नहीं होता है जब आपसे विशेष रूप से आपका दूसरा नाम पूछा जाता है, बल्कि ऐसा शालीन लगने वाले संकेतों के द्वारा भी होता है।

उदाहरण के रूप में, छात्रों के द्वारा जोशीले ढंग से भारत के द्वारा किए गए सर्जिकल स्ट्राइक और पाकिस्तान की तबाही पर चर्चा करते वक्त उनके सुर बदल जाते हैं, और उनकी प्रतिक्रिया शांत हो जाती है, अगर वे किसी मुस्लिम को आते हुए देख लेते हैं या वह चर्चा में शामिल हो जाता है। लहजे का यह साधारण-सा बदलाव, मुस्लिमों को उनकी पहचान याद दिलाता है, और यह भी कि वे प्राकृतिक रूप से पाकिस्तान से सहानुभूति रखने वाले होते हैं।

एक अन्य उदाहरण से भी हम इसे समझ सकते हैं, अगर आप किसी SC/ST दोस्त को यह बता रहे हैं कि वह दूसरे SC/ST छात्रों की तरह नहीं है, वह तेज और मेहनती है; आपको समझना चाहिए कि यह एक तारीफ नहीं है बल्कि एक उपहास है। आप, अपने दोस्त के समुदाय की बराबरी एक निचले स्तर की काबिलियत से कर रहे हैं।

ये घटनाएँ अकेले देखने में बेशक नुकसानदेह न लगें, लेकिन हर रोज होने वाली अन्य घटनाओं से जोड़ कर देखने पर ये चीजें कुचलने वाली साबित हो सकती हैं, और अलगाव की भावना को बढ़ावा दे सकती हैं।

अब तक अवसरों की समानता को न मानने के द्वारा:

हमारे कॉलेज में छात्र अलग-अलग स्कूली पृष्ठभूमि से आते हैं, अलग-अलग स्तरों पर अनुभव प्राप्त करते हैं, और अलग-अलग पढ़ाने के तरीके से गुजरे हैं, हालाँकि, जब यह आशा की जाती है कि एक विद्यार्थी को क्या करने में सक्षम होना चाहिए, तब शिक्षकों और छात्रों के द्वारा न तो इन विभिन्नताओं को पहचाना जाता है और न ही इनको माना जाता है। ऐसा संभव है कि कुछ छात्रों ने अपने विद्यालयों में वादविवाद, चर्चाएँ या प्रैजेनटेशन न की हों। यह भी मुमकिन है कि इन छात्रों को सोसायटी में पहले काम करने का अनुभव भी न हो।

इसलिए, इन छात्रों की हमारे कॉलेज में इस्तेमाल किए जाने वाले सार्वजनिक माध्यमों के द्वारा व्यख्यान देने की असमर्थता यह नहीं बताती है कि ये छात्र अपने आप में सक्षम नहीं हैं। उन्हें पढ़ने के लिए समान अवसर देने के बजाय, उन्हें महसूस कराया जाता है कि उनमें पर्याप्त काबिलियत नहीं है।

और, ऐसे विद्यार्थी भी हैं जिन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में प्राप्त की है। इसलिए, सभी से धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलने की अपेक्षा करना कहीं से भी जायज नहीं है। लेकिन फिर भी, जो छात्र अपने शिक्षकों और साथी विद्यार्थियों के साथ सहज रूप से अंग्रेजी में वार्तालाप करने में असमर्थ हैं, उनके साथ अत्यंत पक्षपात पूर्ण और पूर्व-आधारित व्यवहार किया जाता है। और तो और, कुछ शिक्षक कक्षा में हिंदी में उठाए गए प्रश्नों के उत्तर भी नहीं देते हैं, जबकि वहाँ पर मौजूद सभी लोग हिंदी समझ सकते हैं।

अर्थात, अंग्रेजी केवल भाषा की एक बाधा के रूप में ही सीमित नहीं रहती, क्योंकि हमारे कैंपस में यह एक भाषा से कहीं बढ़कर है। यह अपने आप में एक संस्कृति और प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गई है। वे लोग जो अपनी इच्छानुसार, और प्राकृतिक रूप से अंग्रेजी बोलते हैं, वही लोग हैं जो आमतौर पर अंग्रेजी टेलीविजन सीरीज, फिल्में, गानें, पश्चिमी मीडिया, मनोरंजन और रहन-सहन का पालन करते हैं। वे स्वाभाविक रूप से उन्हीं लोगों से जुड़ते या आकर्षित होते हैं जो इनकी तरह चीजों का पालन करते हैं। लेकिन, समस्या तब उत्पन्न होती है जब यह वर्ग न केवल उन्हें अपने आप से दूर कर देता है बल्कि उन्हें धिक्कार देता है, जिनके ख्यालात इससे मेल नहीं खाते हैं। अंग्रेजी, तब कक्षा में दोस्त बनाते वक्त अनजाने में एक छननी के रूप में इस्तेमाल की जाती है।

हिंदी और अंग्रेजी के लिए भाषा की सख्ती का परिणाम केवल कुछ विशेष लोगों का चयन मात्र होता है। इस समस्या और असमंजस का निवारण उस भाषा के चयन के द्वारा किया जा सकता है, जो अधिकतम

वार्तालाप को मुमकिन बनाए। उदाहरण के रूप में, जैसा कि हमारे सोसायटी के बारे में पहले लेख में वर्णित किया गया है, अगर किसी सोसायटी में गैर-हिंदी भाषी छात्रों की संख्या अधिक है तो प्राथमिकता अंग्रेजी या उस भाषा को देनी चाहिए जिसे सभी सदस्य आसानी से समझ सकें। उपयोग की जाने वाली भाषा के चयन के मापदंड के तौर पर उस भाषा से जुड़ी प्रतिष्ठा या "आकर्षण" को नजरअंदाज करना चाहिए।

जबकि यह एक बिंदु है जिस पर सोच-विचार किया जाना चाहिए, हमें हर पहलू से देखना होगा कि विभिन्नताओं को न स्वीकार करने के द्वारा, गलती करके सीखने के लिए अनुकूल वातावरण न प्रदान करने के द्वारा, रिमीडियल कक्षाएँ और ब्रिज कक्षाएँ न मुहैया कराने के द्वारा, अमीर और गरीब के बीच का अंतर बढ़ने दिया जाता है और ये दोनों कभी नहीं मिल पाते हैं।

विशिष्ट स्थानों की रचना के द्वारा;

हमारे कॉलेज में मित्र-समूह बाहर खाने जाने, साथ पार्टी करने, साथ यात्रा पर जाने, और सोसायटी में साथ काम करने के द्वारा बनते हैं। एक निम्न आय वर्ग की छात्र किसी महंगे रेस्टोरेंट में खाना, नाइट-क्लब में शराब पीना, या तीन सितारा होटलों में ठहरना वहन नहीं कर सकती है। हमने पहले भी चर्चा की है कि किस प्रकार से सोसायटी एक व्यवस्थित ढंग से छात्रों को उनकी पृष्ठभूमि के आधार पर बाँटती हैं, और कैसे एक सोसायटी का भाग होना यह सुनिश्चित करता है कि आप एक विशेष रहन-सहन को अपनाएँ। गरीब छात्र आमतौर पर अपने आप को इस सामूहिकीकरण प्रक्रिया से बाहर रखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कॉलेज में विभिन्न मित्र-समूहों के बीच एक स्पष्ट विभाजन उत्पन्न हो जाता है; जो इस संभ्रांत संस्कृति का हिस्सा बनते हैं, और जो इसका बहिष्कार करते हैं। कई मामलों में हालाँकि, वे अलग छूट जाने के डर से अपनी क्षमता से ज्यादा रहने की कोशिश करते हैं। यह आर्थिक और मानसिक दबाव डालता है। अर्थात, ये चीजें किसी के आय वर्ग को याद दिलाने वाली सबसे बड़ी सूचक हैं।

यह अहम बात है कि अमीर छात्रों की गतिविधियों में गरीब छात्रों के भाग न लेने का एकमात्र कारण केवल पैसा ही नहीं है। वैसे भी अमीरगी केवल धन के द्वारा नहीं मापी जाती है। लेकिन, गरीब छात्र अगर इन गतिविधियों में शामिल होने में सक्षम हों तब भी ऐसा हो सकता है कि वे इन गतिविधियों में सहज न महसूस करें या वे इनसे परिचित ही न हों।

अगर ये स्थान वहन करने लायक हों तब भी ये सभी छात्रों के लिए सहज और उचित नहीं हो सकते हैं। कई शायद कह सकते हैं कि कॉलेज नए-नए प्रयोग करने का समय होता है, लेकिन प्रयोग पिक्चर में तभी आते हैं जब इनमें विकल्प भी शामिल हों। अगर गरीब छात्रों के लिए इन असहजता पूर्ण उद्यमों के अनुरूप खुद को ढालना स्वीकृति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है, तब विकल्प की गुंजाइश काफी हद तक खत्म हो जाती है। तथ्य यह है कि यहाँ पर कोई वैकल्पिक मंच है ही नहीं जहाँ पर सभी लोग मिल सकें और साथ काम कर सकें (यह स्पष्ट है कि कक्षाएँ मेलजोल का वह स्थान बनने में असफल रही हैं), इसका परिणाम यह होता है कि इन परिस्थितियों में जहाँ लोग इन संभ्रांत स्थानों तक नहीं पहुँच सकते हैं, वहाँ वे अन्य लोगों से मित्रता नहीं कर पाते हैं और केवल एक सीमित मित्र-समूह तक सिमट कर रह जाते हैं।

विशिष्ट संवादों की रचना के द्वारा;

SRCC, एक उदारवादी कैंपस लगने के बावजूद, केवल विशिष्ट विचारधाराओं और मान्यताओं को स्थान देता है, और किसी अन्य परिप्रेक्ष्य के लिए मुख्य रूप से इसके दरवाजे बंद हैं। चर्चाओं के विषय सोच-समझकर चुने जाते हैं ताकि असहज वार्तालाप स्थान न ले सकें, और कोई भी अप्रिय राय उभर कर न आ सके।

उदाहरण के लिए, जाति पर होने वाली चर्चाएँ, हमेशा आरक्षण के बारे में होंगी कि कैसे नाकाबिल लोग इस प्रावधान का फायदा उठा रहे हैं। ये विषय जाति तुष्टिकरण या वोट बैंक की राजनीति तक भी जा सकते हैं। इससे पता चलता है कि कैसे जातिगत भेदभाव हमारे कॉलेज की दीवारों के अंदर काम करता है, हालाँकि, इन्हें अनसुना कर दिया जाता है। और, यहाँ गरीबी पर होने वाली बातचीत हद से ज्यादा पीड़ादायक और बेचारगी से भरपूर होती हैं। महिला सशक्तिकरण पर होने वाले संवाद भी अजीबोगरीब होते हैं- वे लोग जो यह कहते हैं कि अपनी पसंद के परिधान पहनना किसी महिला के चरित्र का निर्धारण नहीं कर सकता है, वही लोग हैं जो हिजाब ओढ़े किसी भी महिला को प्रताड़ित समझने लगते हैं। नारीवाद भी कैंपस में केवल संभ्रांत महिलाओं के लिए ही है।

इस प्रकार, पहले से बनाए हुए झूठे आदर्श हैं जिनपर चर्चा की जाती है, और चर्चाओं के आम बिंदु भी पहले से ही निर्धारित होते हैं। अगर कोई वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है तो, आमतौर पर चर्चाएँ अचानक समाप्त हो जाती हैं। कभी-कभी, भावनाओं को ठेस पहुंचाने के डर से लोग संवेदनशील मुद्दों पर बात करने से बचते हैं।

सभी उपरोक्त कारण हमारे कॉलेज के अमीर और गरीब छात्रों के बीच एक काल्पनिक दीवार खड़ी कर देते हैं। यह स्थान गरीब छात्रों के लिए हमेशा चिंताजनक, अवांछनीय और निर्जन है। और, उनकी कम संख्या, उन्हें और अलग-थलग एवं पृथक कर देती है। वे कॉलेज से जुड़ाव महसूस नहीं करते हैं। वे बहुसंख्यकों की संस्कृति की नकल करने का भरसक प्रयास करते हैं और अपनी पहचान को छुपाते हैं, और इसमें असफल हो जाने पर कॉलेज में शरीक होना पूरी तरह से बंद कर देते हैं। हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि क्यों दलित और मुस्लिम छात्रों की उपस्थिति व्यवस्थित रूप से अन्य छात्रों से कम है। इसके कारण वे शैक्षिक और गैर-शैक्षिक गतिविधियों में कमजोर प्रर्दशन करते हैं। और, उनके आत्मविश्वास का स्तर बारंबार होने वाले असहिष्णुता पूर्ण अनुभव से बुरी तरह प्रभावित होता है, जो उनके लिए आगे कॉलेज में टिक पाने की राह और भी मुश्किल कर देता है। ये सब उनके आत्मविश्वास और भावनात्मक स्वास्थ्य पर गहरा आघात करते हैं, जिसमें से कुछ के निशान जीवन भर बने रहते हैं। अर्थात, उच्च शिक्षा संस्थानों (जिन्हें व्यक्तिगत उन्नति का मंदिर होना चाहिए) में इस तरह के उपस्थित कशमकश को जब बिना जाँच-पड़ताल के छोड़ दिया जाता है, तब यह उस हद तक बढ़ जाता है कि इसका परिणाम "संस्थागत हत्या" के सिवाय और कुछ नहीं होता है, जिसमें रोहित वेमुला या डॉक्टर पायल तड़वी जैसे लोगों को अपनी जान गँवानी पड़ती है।

अमीर और गरीब की खाई सामान्य तौर पर देश की सामाजिक व्यवस्था के द्वारा पाटी जाती है, जो युवावस्था से ही विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों के बीच होने वाले संपर्क और परिचय को रोक देता है। वास्तव में, अमीरों और गरीबों के बीच उनके जीवन में कहीं भी और कभी-भी मेल-मिलाप होता ही नहीं है। वे अलग विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं, अलग-अलग बस्तियों में रहते हैं और अलग-अलग रहन-सहन का पालन करते हैं। यह आपको प्राकृतिक रूप से उन्हीं लोगों से जुड़ा हुआ महसूस कराता है

जिनके साथ आप हमेशा से रहते हुए आए हैं। हमारे कैंपस में होने वाली चीजें और कुछ नहीं बल्कि हमारे छात्रों का जिंदगी भर अलग-थलग जीवन-यापन का परिणाम है।

हालाँकि, इसे SRCC के संदर्भ में लिखा गया है, लेकिन यह परिदृश्य केवल SRCC तक ही सीमित नहीं है। यह विशेष रुप से दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्य कॉलेजों और सामान्य तौर पर देश के अनेक उच्च शिक्षा संस्थानों में मौजूद है। यद्यपि, ऊपर सूचित किए गए बिंदु संपूर्ण नहीं है और न ही सभी के द्वारा समान मात्रा में अनुभव किए जाते हैं, फिर भी हम आशा करते हैं कि यह लेख हमारे कैंपस में अल्पसंख्यकों और हाशिये पर मौजूद छात्रों की व्यवस्थित रूप से उत्पन्न होने वाली अलगाव की भावना पर और ज्यादा विश्लेषण और संवादों को प्रोत्साहित करेगा।

काफी कुछ सीखने की जरूरत है, और काफी कुछ भूलने की भी आवश्यकता है, और यह नामुमकिन नहीं है। हमारे कैंपस में मेल-मिलाप के ऐसे स्थान बनाए जा सकते हैं और बनाए जाने चाहिए जहाँ पर लोग जुड़ा हुआ महसूस करने के लिए दूसरों की नकल करने पर मजबूर न हों। हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सामाजिक पहचान, सामाजिक कलंक या उन्हें ढोने वालों के लिए बोझ का कारण न बन जाए। ऐसा तभी हो सकता है जब हम इन मुद्दों को पहचानें और एक दृढ़-संकल्प के साथ मिलकर इनसे प्रतिदिन सामना करें, हम अपने कैंपस को वास्तव में एक स्वतंत्र स्थान बना सकते हैं जो सभी संस्कृतियों और पृष्ठभूमियों को सशक्त बनाता है एवं उन्हें फलने-फूलने का पूर्ण अवसर भी प्रदान करता है। यह एक धीमी प्रक्रिया है, लेकिन कहीं से तो इसकी शुरुआत करनी होगी, और अभी के अभी करनी होगी।

इसलिये, हमने 'कैंपस पर्सपेक्टिव' के तौर पर एक साझा माध्यम की शुरुआत की है, जिससे कि इस दिशा में एक प्रभावी कदम उठाया जा सके, और इससे फर्क नहीं पड़ता है कि यह मंच कितना बड़ा या कितना विस्तृत है। हम आशातीत हैं कि ज्यादा से ज्यादा लोग हमसे जुड़ेंगे, और उम्मीद करते हैं कि ये चर्चाएँ कैंपस में इनके समकक्षों तक पहुँचेगी। हम आग्रहपूर्वक विनती करते हैं कि ज्यादा से ज्यादा लोग इन समस्याओं पर सकारात्मक कदम उठाने के लिए हमारे साथ आएँ, क्योंकि हम मानते हैं कि एक साथ इकट्ठा होना बदलाव लाने के लिए सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति होती है। वास्तव में कम ही चीजें हैं जो जन-साधारण की इच्छा और साझा उद्देश्य की शक्ति की बराबरी कर सकती हैं।